
माँ - बच्चों का मासिक पत्र



पाटलीपुत्र में एक गरीब कहार रहा करता था। वह पानी ढोकर जीवन निर्वाह किया करता था। उसका बसेरा नगर के उत्तर द्वार के पास था। दक्षिण द्वार के पास एक स्त्री रहा करती थी। वह भी पानी के कलश ढोकर रोजी किया करती थी। उन दोनों में प्रेम हो गया और उन्होंने आपस में विवाह कर लिया।

विवाह तो हो गया था पर दोनों शहर के दो सिरों में रहते थे। इसलिये वे एक दूसरे को अक्सर देख न पाते थे।

एक दिन एक त्यौहार आया। कहार अपना काम जल्दी ख़तम करके दक्षिण द्वार के पास रहनेवाली अपनी पत्नी को देखने गया।

"आज हम त्योहार मनाएँगे। मेरे पास एक अधन्नी है। तुम्हारे पास कितने पैसे है?" पत्नी ने अपनी अधन्नी दिखाते हुए पति से पूछा।

"मेरे पास भी अधन्नी है। उसको मैंने उत्तर द्वार की दीवार के एक गढ़े में, होशियारी से रख रखा है।"

"काफी है। उसमें से एक पैसे के फूल खरीदे जायें और एक पैसे से चन्दन। और बाकी अधन्नी से खीर बनाकर खाई जाय।" पत्नी ने कहा।

यह सुन पति बड़ा खुश हुआ। यह सोच कि वे भी त्योहार मना रहे थे, वह फूला न समाता था। "मैं उत्तर द्वार के पास जाकर अधन्नी ले आता हूँ।" उसने पत्नी से कहा। वह द्वार की ओर चल पड़ा।

कड़ी दुपहरी थी। आसमान आग बरसा रहा था। नीचे रास्ते में रेत भी आग हो रही थी। परन्तु वह गरीब इतना

श्रीमती मञ्जुलता

खुश था कि न उसे धूप ही लग रही थी, न उसके पैर ही जल रहे थे। वह उछलता कूदता, उत्तर द्वार की ओर जा रहा था।

दोनों द्वारों के बीच में राजा का महल पड़ता था। राजा ने ऊपर की मञ्जिल से, उसको धूप और तपन की परवाह न कर, गाते नाचते, उछलते जाते गरीब पानी ढोनेवाले को देखा। राजा को उसे देखकर आश्चर्य हुआ। उसने जानना चाहा कि वह क्यों इतना प्रसन्न था। उसने नौकरों को बुलाकर कहा-"वह जो गाता गाता जा रहा है, उसे मेरे पास ले आओ।"

सैनिकों ने उसके पास जाकर कहा- "तुम्हें राजा बुला रहे हैं। चलो।"

"राजा से मुझे क्या काम? मैं उन्हें नहीं जानता।" अपने रास्ते पर बढ़ते हुए पानी ढोनेवाले कहार ने कहा।

सैनिक, उसको जबरदस्ती खींचते खींचते राजा के पास ले गये। राजा ने उसे देखकर पूछा-"ऊपर सिर जल रहा है, और नीचे पैर और तुम कहाँ बेपरवाह भागे जा रहे हो?"

"हुजूर! क्योंकि मेरे दिल में इससे अधिक गरम इच्छा है, इसलिए ये धूप



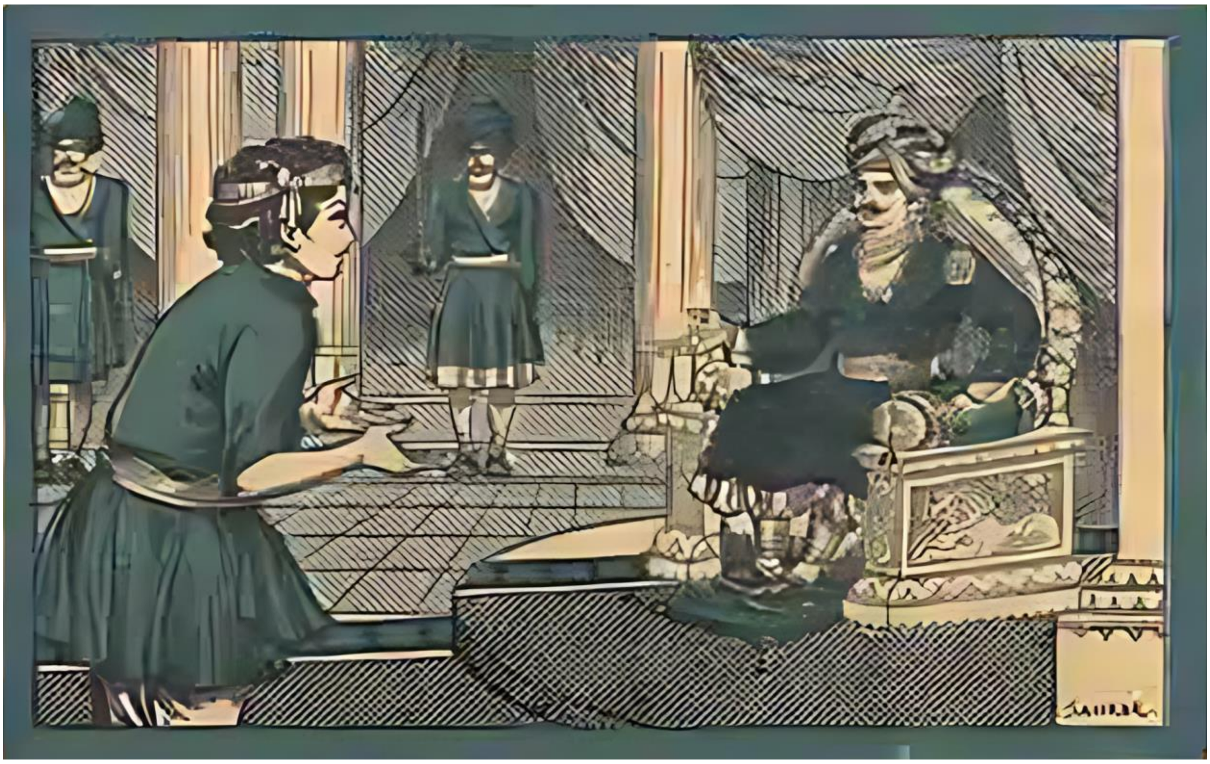
और तपन मुझे नहीं सताते।" पानी ढोने वाले गरीब ने कहा।

राजा हैरान था कि वह इच्छा क्या हो सकती है। उसने पूछा-"वह क्या इच्छा है?"

"हुजूर, आज त्यौहार है। मेरी पत्नी के पास अधन्नी है। मैंने उत्तर द्वार में दीवार में एक अधन्नी छुपा रखी है। दोनों की अधन्नी मिलने से एक आना होगा। उसमें से एक पैसे के फूल, एक पैसे का चन्दन और अधन्नी से खीर बनाकर, मजे में हम त्योहार मनाएँगे। इसीलिए मैं जा रहा था। मुझे उत्तर द्वार से अपनी अधन्नी लेकर दक्षिण द्वार की ओर जाना है। तब हम मिलकर त्यौहार मनाएँगे। मुझे जल्दी जाने दीजिये।" गरीब ने कहा।

यह सुन राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। "अब जितना चले हो, उत्तर द्वार तक पहुँचने के लिए उतना और चलना पड़ेगा। फिर दक्षिण द्वार तक जाने के लिए इससे दुगना चलना पड़ेगा। क्यों इतनी दौड़धूप करते हो? मैं अधन्नी देता हूँ। जाकर त्यौहार मनाओ।" राजा ने कहा।

"अच्छा हुजुर? आपकी अधन्नी ले लूँगा। और अपनी भी ले आऊँगा।"



पानी ढोनेवाले कहार ने कहा। "उस अधन्नी की क्यों फिक्र करते हो? चाहते हो तो चवन्नी दे दूँगा। जिस रास्ते से आये हो, उसी रास्ते चले जाना।" राजा ने कहा।

"अच्छा हुजूर! तो चवन्नी दिलवाइये। में अपनी अधन्नी भी लेकर वापिस चला जाऊँगा।" गरीब ने कहा।

राजा ने जिद पकड़ी। उसने देखना चाहा कि वह कितना देने पर अपनी अधन्नी छोड़ता है। रुपया देने के लिए कहा, फिर बढ़ते बढ़ते वह रकम एक लाख रुपये तक बढ़ी, पर गरीब ने अपनी अधन्नी की हट न छोड़ी। वह गिड़गिड़ाने लगा कि उसे अपनी अधन्नी लाने दिया जाय।

आखिर राजा ऊब गया। उसने कहा-"अगर तुम अपनी अधन्नी लेने न गये तो मैं तुम्हें आधे नगर का राजा बना दूँगा। कहो, क्या कहते हो?"

"अच्छा, तो ऐसा ही कीजिये।" पानी ढोनेवाले ने कहा।

तुरन्त राजा ने मन्त्री को बुलाकर हिदायत की "इसको आधे नगर का राजा बनाते हुए एक घोषणा तैयार कीजिये।"

नगर को मन्त्री ने दक्षिण और उत्तर के भागों में विभाजित किया। "तुम कौन-सा भाग चाहते हो, बताओ। उसके अनुसार मन्त्री घोषणा करवा देंगे।" राजा ने कहा।

"अच्छा, हुजूर! मुझे उत्तर का भाग ही दिलवाइये।" पानी ढोनेवाले ने कहा। सब जानते थे कि उत्तर द्वार में रखी अधन्नी के लिए ही उसने यह भाग माँगा था।

राजा ने अपने वचन के अनुसार गरीब पानी ढोनेवाले कहार को नगर के उत्तर भाग का राजा बना दिया। परन्तु लोग उसको "अधन्नी का राजा" कहकर ही पुकारा करते थे।





जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था, तब बोधिसत्व ने उसके लड़के के रूप में जन्म लिया। ब्रह्मदत्त ने उनका नाम ब्रह्मदत्त कुमार रखा। कुमार ने सोलहवें वर्ष की आयु से पहले ही, तक्षशिला में, वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद आदि का अध्ययन कर लिया था। जब वे अध्ययन समाप्त करके आये तो राजा ने उन्हें युवराज बनाया।

उस जमाने में, काशी में कई प्रकार के मेले लगा करते थे और उन मेलों में लोग भेड़- बकरियों की बलि दिया करते और उनके रक्त से देवताओं पर नैबेद्य चढ़ाया करते। युवराज, जनता का यह अन्ध विश्वास और दुराचार देखकर बहुत दुःखित हुए। उन्होंने निश्चय की किया-"जब मैं राजा बनूँगा तो इन अन्ध-विश्वसों को दूर कर दूँगा।" फिर उन्होंने अपने निश्चय को इस प्रकार कार्यान्वित किया:

काशी नगर से बाहर एक बढ़ का पेड़ था। लोगों का विश्वास था कि उस पेड़ पर एक देवता रहा करता था। वे तरह तरह की मनौतियाँ किया करते। उनका ख्याल था कि वह देवता भक्तों की अनेक इच्छाओं को पूरी करता था।

एक दिन रथ पर चढ़कर ब्रह्मदत्त कुमार नगर के बाहर बढ़ के पेड़ के पास गये। उस पेड़ के चारों ओर कई भक्त स्त्री, पुरुष भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा कर रहे थे। पेड़ से कुछ दूरी पर ही, युवराज रथ पर से उतर गये और पेड़ पर फूल चढ़ाकर, उन्होंने भी तीन बार पेड़ की प्रदक्षिणा की। फिर वे रथ पर चढ़कर नगर वापिस चले गये। वे तब से नियमपूर्वक उस पेड़ के पास जाते और पेड़ की पूजा कर उसकी प्रदक्षिणा किया करते।

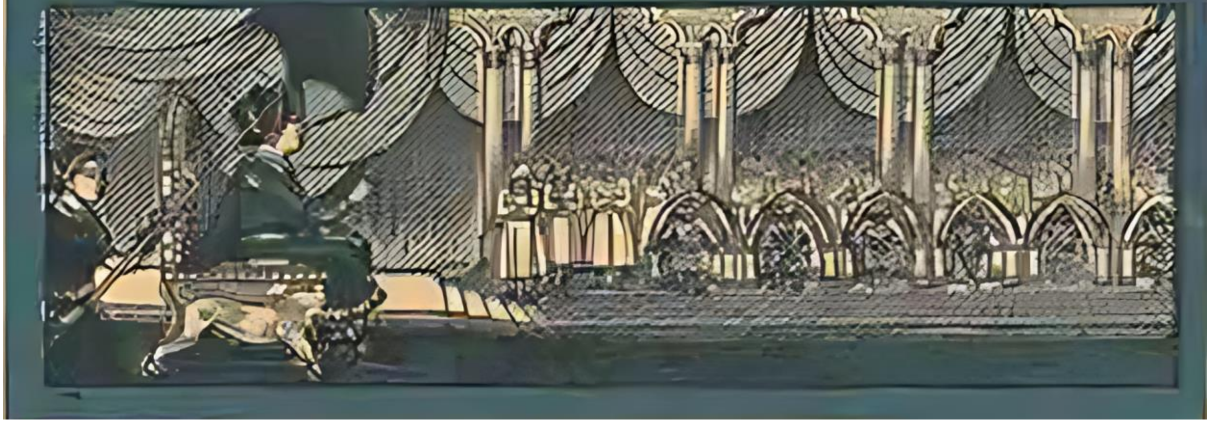
कुछ दिनों बाद, बूढ़े राजा की मृत्यु हो गई। ब्रह्मदत्त कुमार काशी राज्य के राजा बने। जनता के अन्ध विश्वासों को खतम करने का अब उन्हें मौका मिला। राज्याभिषेक के बाद उन्होने एक सभा बुलायी और उसमें यों कहा:

"यहाँ उपस्थित सभी सज्जन सावधान होकर सुनें। आप यह जानते ही होंगे कि जब मैं युवराज था, सब में शहर से बाहर बढ़ के पेड़ की पूजा करने जाया करता था। मेरी युवराज बनने की इच्छा में और पेड़ की प्रदक्षिणा करने में पारस्परिक सम्बन्ध है। मैने मनौती की थी कि यदि मैं राजा बन गया तो में हज़ार पशुओं की बलि दूँगा। अब मेरी इच्छा पूरी हो गई है। इसलिए बलि देनी ही होगी। इसके लिए आवश्यक प्रबन्ध करवाइए।"

यह सुनते ही समासद बहुत प्रसन्न हुए। मन्त्रियों ने कहा-"महाराज! आप यह बतायें कि किन पशुओं की आप बलि देना चाहते हैं।"

"मैंने बलि देने के लिए पशुओं के बारे मैं नहीं सोचा था। पर मेरा मतलब देवताओं को पशु बलि देनेवाले मनुष्यों से था। बलि देनेवाले हज़ार मनुष्यों को इकट्ठा कीजिये। आप यह घोषणा करवा दीजिये कि जो कोई देवताओं को बलि चढ़ायेगा, वह स्वयं बढ़ के पेड़ पर बलि चढ़ा दिया जायेगा।" राजा ने कहा।

समासद यह सुन भौंचके रह गये। क्यों कि सब को बलियो पर विश्वास था, इसलिए वे कुछ कह न पाये। राजा की इच्छा के अनुसार राज्य में ढिँढोरा पीटा गया। तब जादू की तरह बलि देने की तथा यकायक समाप्त हो गई।





[१४]

[शिवदत्त और मन्दरदेव को नौकाएँ रात के समय एक द्वीप में पहुँची। न जाने कहाँ से कोई पत्थर आकर एक सैनिक को लगा। मन्दरदेव ने जिस तरफ से पत्थर आया था उस तरफ बाण छोड़ा। तुरन्त एक भयङ्कर आवाज सुनाई दी। अगले दिन सवेरे उनको आसपास पड़े पत्तों पर खून की बूँदें दिखाई दी। बाद में--]

शिवदत्त और मन्दरदेव की तरह सैनिक भी पत्तों पर खून के धब्बे देखकर घबरा गये। सब को यह समझने में देर न लगी कि जो भयङ्कर आवाज उनको रात में सुनाई दी थी, वह हो न हो, किसी आदमी की ही हो सकती थी।

खून को गौर से देखते हुए शिवदत्त ने कहा-"यह जरूर मनुष्य का खून है। जैसा मैंने अनुमान किया था, वह आदमी मरा नहीं है; सिर्फ घायल हुआ है। इसमें भी सन्देह नहीं कि वह यहाँ से भाग गया। है। फिर भी अच्छा है कि हम अस पास की झाड़ियों में उसे ढूँढ़े। वरना हमारे लिए आगे बढ़ना खतरे से खाली नहीं है।

मन्दरदेव और तीन सैनिक एक तरफ गये। शिवदत्त और बाकी सैनिक दूसरी तरफ। मन्दरदेव थोड़ी दूर गया था कि उसे झाड़ियों में कोई आहट सुनाई दी। यह सोच कि जिस दुश्मन को वह खोज रहा था, वह मिल गया है, वह आगे कूदा।

परन्तु यह आवाज मनुष्य की न थी। जङ्गली सूअर की थी। वह चीखता हुआ मन्दरदेव को अपने दाँतों से पायल करने के लिये झाड़ी में से बाहर निकला। मन्दरदेव चौका। उसके दाँतों से बचकर अपनी तरवार से उसने उसे मारा। सूअर जखमी हो गया। पीछे हटकर वह फिर मन्दरदेव की ओर लपका, इस बीच में मन्दरदेव के सैनिकों ने उसे मारा-काटा। वह कराहता हुआ वहीं ठण्डा हो गया।

शिवदत्त के सैनिक भी उस तरफ भागे भागे आये। उनको कराहते सूअर के पास मन्दरदेव खड़ा दिखाई दिया। "आपका शोर-शराबा सुनकर मैने समझा कि वह आदमी मिल गया है और आप आफत में हैं। इसलिये भागा भागा आया हूँ।" शिवदत्त ने मुस्कराते हुए कहा।

"बिना खोजे ही खाने को मिल गया है। रात में हम पर जिसने झाड़ियों के पीछे से पत्थर फेंके थे, उसके बारे में, बाद में देखा जा सकता है। पहले हमको अपनी भूख मिटाना जरूरी है।" मन्दरदेव ने कहा।

सैनिक ईन्धन चुन कर लाने के लिये इधर उधर चले गये। मन्दरदेव और शिवदत्त



दोनों आग तैयार कर रहे थे। तब उन्हें दूरी पर कोई भयङ्कर आर्तनाद सुनाई दिया। उनके कान फूटते फूटते बचे। आर्तनाद सुनते ही मन्दरदेव और शिवदत्त झट तलवार लेकर उस तरफ भागे जिस तरफ आर्तनाद हो रहा था। थोड़ी दूर जाने पर उन्होंने जो भयङ्कर दृश्य देखा तो भय और आश्चर्य के कारण उनमें कँपकपी भी पैदा हो गयी।

इस बीच में "वन-मानुस! बन मानुस!" चिल्लाते चिल्लाते कुछ सैनिक उनकी ओर भागते भागते आये। बात यह थी कि जब एक सैनिक लकड़ियाँ चुन रहा था तो किसी ने पीछे से आकर उसका गला घोट दिया। डर के मारे वह सैनिक जोर जोर से चिल्लाने लगा।

"यह जरूर बन मानुस है, इसमें कोई सन्देह नहीं।" यह सोचकर मन्दरदेव, उस भयङ्कर प्राणी की ओर बढ़ा ही था कि शिवदत्त ने उसे रोकते हुए पीछे से कहा- "ठहरो मन्दरदेव।" वह वन मानुस, जिसने सैनिक का गला दबोच रखा था, पीछे हटकर भागने की कोशिश करने लगा। तुरन्त तीनों सैनिक उस पर झपट





पड़े और जङ्गली बेलों से उसके हाथ-पैर बाँध दिये।

"यह बन मानुस नहीं है, यह सौ फीसदी मनुष्य है। किसी बदनसीबी के कारण इसकी यह हालत हो गयी है।" शिवदत्त ने कहा।

तुरन्त एक सैनिक ने आश्चर्य से कहा "शिवदत्त! देखिये, इसके बायें हाथ में चोट लगी है और घाव से खून बह रहा है।" वह सैनिक चीख पड़ा।

मन्दरदेव ने झुककर उस भयङ्कर प्राणी को देखा। "शिवदत्त! रात में इसी ने हम पर पत्थर फेंके थे। देखो, मेरा बाण, इसको इस हाथ पर लगा था। आप ठीक कहते हैं, यह वनमानुस नहीं, मनुष्य ही है।"

इतने में वह भयानक प्राणी कराहने लगा-"मैं भी तुम जैसा मनुष्य हूँ। इस भयङ्कर द्वीप में बारह साल से अकेला रहता रहता ऐसा हो गया हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है? तुम्हें क्यों इस द्वीप में बारह वर्ष रहने की नौबत आई?" शिवदत्त ने उससे पूछा।

शिवदत्त के प्रश्नों को सुनने से ऐसा लगता था, जैसे वह कुछ याद करने की कोशिश कर रहा हो। वह थोड़ी देर चुप रहकर, यों कहने लगा

"हुजुर, मेरा नाम वज्रमुष्टि है। मैं शमन द्वीप का रहने वाला हूँ। जब मैं अठारह साल का हुआ तो समुद्रकेतु नाम के जालिम समुद्री चोर के नीचे काम करने लगा। समुद्र में जानेवाली नौकाओं को और किनारे के गाँवों का लूटना हमारा काम था। मैं उसके साथ रहकर इस तरह का जीवन निर्वाह करता रहा। फिर हम दोनों में मनमुटाव हो गया। तब वह मुझे इस द्वीप में अकेला छोड़ गया।"

"तू शमन द्वीप का रहनेवाला है?" बज्रमुष्टि की बातें सुनकर शिवदत्त ने आश्चर्य से पूछा। शमन द्वीप के नाम से, शिवदत्त को शाक्तय की, चाँदी के चण्डी देवालय के बनाने के लिए दूसरे देशों पर हसला करने की बात याद हो आयी। शमन द्वीप कहाँ है? इस समय उस द्वीप का कौन राजा है? शिवदत्त ने सोचा कि इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर बज्रमुष्टि से पाया जा सकता था। पर फिर उसने सोचा कि उस पूछतलब के लिए वह उपयुक्त समय न था। वे फिलहाल यही जानना चाहते थे कि वे किस द्वीप में थे और उस द्वीप की क्या हालत है।

"वज्रमुष्टि! तुम इस द्वीप में बारह साल से रह रहे हो न? शायद तुम यहाँ रहनेवालों के बारे में कुछ जानते हो और उनके तौर तरीकों से भी अच्छी तरह वाकिफ हो।" शिवदत्त ने कहा।

वज्रमुष्टि ने उदास हो सिर हिला दिया। "हुजुर! यद्यपि में इस द्वीप में बारह साल से रह रहा हूँ, तो भी मैं इस द्वीप के बारे में अधिक नहीं



जानता हूँ। भोजन ढूँढ़ते ढूँढ़ते क्रूर जन्तुओं से बचते बचते ही, मैंने ये बारह साल बिता दिये। इसी दौड़-धूप में कई मुसीबतें झेलीं और समय वैसे ही गुज़र गया। एक दो बार मैने जरूर समुद्रकेतु के चोरों को इस तरफ से जाते हुए देखा था। इसके सिवाय उनके बारे में मैं और कुछ नहीं जानता।"

"इस द्वीप में क्या कभी तुमने किसी आदमी को नहीं देखा?" शिवदत्त ने अचम्भे से पूछा।

वज्रमुष्टि ने कुछ याद करते हुए सिर हिलाया। "इन बारह वर्षों में मैंने चार पाँच बार ही आदमियों को देखा है।"



वे बहुत हट्टे-कट्टे हैं। अच्छे शिकारी हैं। सिर पर सीङ्ग धारण करते हैं। पर वे शायद यहाँ कहीं नहीं रहते। शिकार करते करते वे कहीं चले जाते हैं।" उसने कहा।

शिवदत्त मन्दरदेव की ओर देखने लगा। मन्दरदेव ने हँसकर कहा- "शिवदत्त। फिल्हाल तो हमें इस द्वीप में रहना ही होगा। इसके अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। इसलिए आस पड़ोस का इलाका देखकर मालूम किया जाय कि यह कैसी जगह है। अन्धेरे से पहले ही यह काम हो जाना चाहिए। फिर धूप-पानी से बचने के लिए छोटी छोटी कुटिर बनाई जा सकती हैं।"

शिवदत्त भी यह सुझाव मान गया। फिर उसने सैनिकों की तरफ मुड़कर कहा-"बज्रमुष्टि को छोड़ दो।" सैनिकों ने जङ्गली बेलें काट दी। तब बज्रमुष्टि ने बड़े विनीत भाव से हाथ जोड़कर शिवदत्त से कहा- "अब मैं कहाँ जाऊँ? मुझे भी अपने साथ रखियेगा। मैं भी मक्तिभाव से आपकी सेवा करूँगा। आपके बताये मार्ग पर चलूँगा।"

शिवदत्त ने अपने सैनिकों की ओर देखा। उन सब ने स्वीकृति जताने के लिए अपने हाथ उठाये। दो चार सैनिकों ने, बज्रमुष्टि के पास जाकर स्नेह से उसके कन्धे थपथपाये।

"पहले भूख मिटानी है। बाद में आसपास घूमकर मालूम करेंगे कि इस द्वीप की क्या हालत है और किस तरह के लोग यहाँ रह रहे हैं।" मन्दरदेव ने कहा।

शिवदत्त की भी यही राय थी। सैनिकों की लाई हुई लकड़ियों को लेकर आग जलाई गई। मारे हुए सूअर को घसीटकर

सैनिकों ने आग में डाल दिया। भूनते हुए सूअर की ओर थोड़ी देर देखने के बाद वज्रमुष्टि ने कहा-"यह एक छोटा सूअर हम सब की भूख मिटाने के लिए काफी नहीं होगा। अगर आप की इजाजत हो तो मैं जाकर पाँच छ मिनट में दो चार जानवर और मार लाऊँगा।"

मन्दरदेव और शिवदत्त ने उसको इजाजत दे दी। वज्रमुष्टि के साथ दो सैनिक भी धनुष बाण लेकर निकले। थोड़ी दूर जाने के बाद उनको दो-तीन हरिण घास खाते दिखाई दिये। सैनिकों ने उन्हें मारने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाये। बज्रनुष्टि ने उन्हें रोकते हुए कहा-"इन छोटे जन्तुओं पर क्यों फालतू अपने बाण खराब करते हो? तुम यहाँ ठहरो। मैं काम पूरा किये देता हूँ।" यों कह वह पेड़ों की आड़ में से धीमे धीमे चला।

सैनिक भी चुपचाप वज्रमुष्टि के पीछे पीछे चले। कुछ दूर जाने के बाद, हरिणों के पास पेड़ पर बिल्ली की तरह वज्रमुष्टि चढ़ने लगा। सैनिकों को मालूम नथा कि वह क्या करने जा रहा था। वे अचरज से उसकी तरफ देख रहे थे।



वज्रमुष्टि हरिणों के ऊपरवाली टहनी पर साँप की तरह रेङ्गता रेङ्गता पहुँच गया और मौका देखकर यकायक घास खाते हुए हरिणों पर वहाँ से कूद पड़ा।

चुटकी भर में हरिण वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गये। पर उनमें से एक बज्रमुष्टि के हाथ में फँस गया था और छूटने के लिए छटपटा रहा था। वज्रवृष्टि ने उस हरिण को अपने कन्धे पर आसानी से डालते हुए कहा-"इन बारह सालों में मैंने अपना भोजन इसी तरह पाया है। बरछे, बाण, मेरे पास थे नहीं, जो उन्हें बरतता। खाली

हाथ ही मुझे एक दो बार शेर और भालू से लड़-झगड़ कर जान बचानी पड़ी।"

बज्रमुष्टि के बल और चालाकी को देखकर सैनिकों को बहुत आश्चर्य हुआ। उस पाँच फुट के नाटे, छोटे पैर, छोटे हाथवाले आदमी में इतनी ताकत हो सकती है, इसकी कभी कल्पना भी उन्होंने न की थी।

थोड़ी देर बाद सब मिलकर शिवदत्त के पास गये। जब सैनिकों ने यह सुनाया कि बज्रमुष्टि ने हरिण कैसे पकड़ा था तो शिवदत्त को भी बहुत आश्चर्य हुआ।

मन्दर देव, जहाँ बैठा था, वहाँ से उठकर बज्रमुष्टि के पास गया। उसकी बाँह पकड़ कर उसने कहा- "बज्रमुष्टि, हमारा सौभाग्य है कि तुम हमें मिले। जिस प्रकार तुम्हें समुद्रकेतु ने दगा दिया है, उसी प्रकार नरबाहन ने भी मुझे भी धोखा दिया है। इसलिए हमें कभी यह न भूलना चाहिए कि हम दोनों को बदला लेने के लिए जीवित रहना चाहिये।"

"मन्दरदेव ने जो कहा है, ठीक है। तुम्हें हमारा अनुयायी होना ही चाहिये। इस द्वीप में यदि हमें किसी सङ्कट का सामना करना पड़ा, तो मुझे आशा है, तुम हमारी जरूर मदद करेंगे। मुझे विश्वास है कि तुम कभी न कभी उस समुद्री डाकू, समुद्रकेतु से, जिसने तुम्हें यहाँ बारह साल से रख रखा है, बदला ले सकोगे।" शिवदत्त ने कहा।

"हुजूर! आपका कहना ठीक है। मैं भी उसी दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" वज्रतुष्टि का यह कहना था कि समुद्र के किनारे से भयङ्कर चीत्कार सुनाई देने लगा। सब चौंककर उस तरफ देखने लगे।

[अभी और है]





प्रतीकार

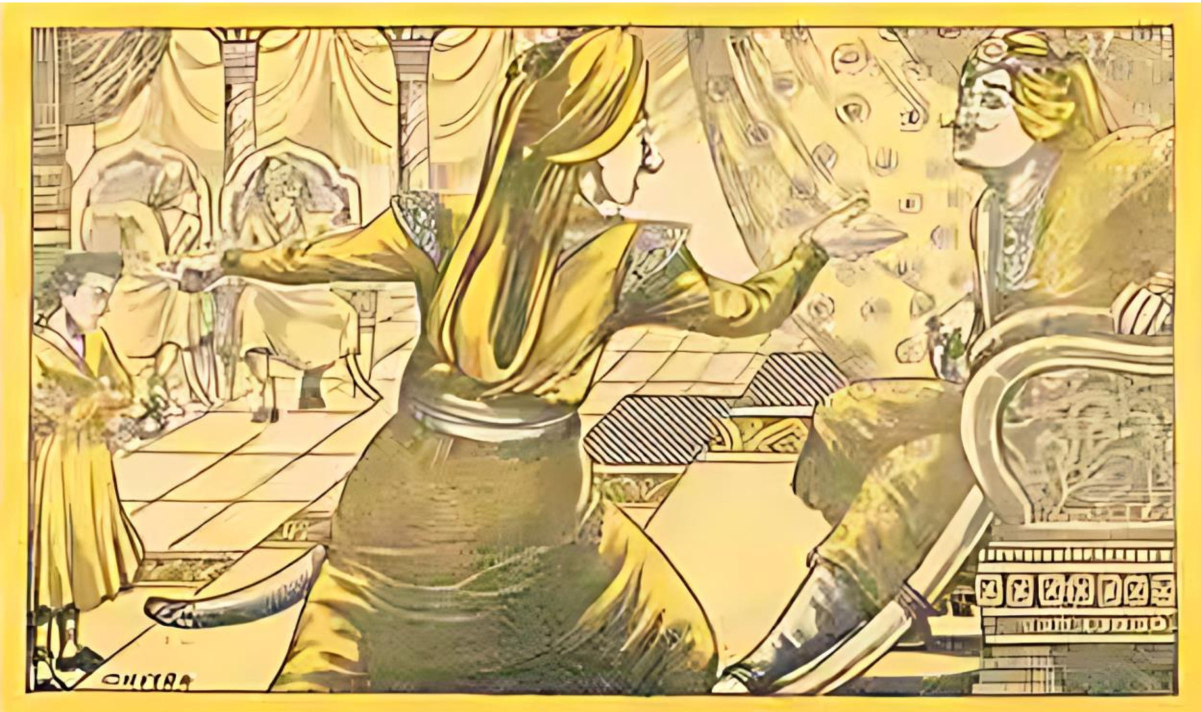
विक्रमार्क ने जिद न छोड़ी। वह फिर पेड़ के पास गया। शव को उतार कर कन्धे पर डाल, चुम्बाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शब में स्थित बेताल ने कहा-"राजा भानुदत्त ने भी अपनी जिद छोड़ दी थी, पर तुम छोड़ने का नाम नहीं लेते। उसकी कहानी सुनने पर शायद तुम अपनी जिद छोड़ दोगे। सुनो:-"

किसी जमाने में, हिमालय की तलहटी में मणिमन्त नाम का एक छोटा राज्य था। नन्दिकेतु उस राज्य का सेनापति था। उसके बल पराक्रम के कारण शत्रु मणिमन्त पर अक्रमण करने का साहस नहीं कर पाते थे। राजा भी सेनापति की ही सलाह पर सब कुछ किया करता।

नन्दिकेतु की पुष्पावती नाम की एक लड़की थी। वह बहुत सुन्दर थी। उससे विवाह करने के लिए कई राजकुमार उतावले हो रहे थे। परन्तु पुष्पावती भानुदत्त नाम के युवक से प्रेम किया करती थी। भानुदत्त सुन्दर तो था ही, वह बड़े घराने का भी था। उसका पिता एक सामन्त था।

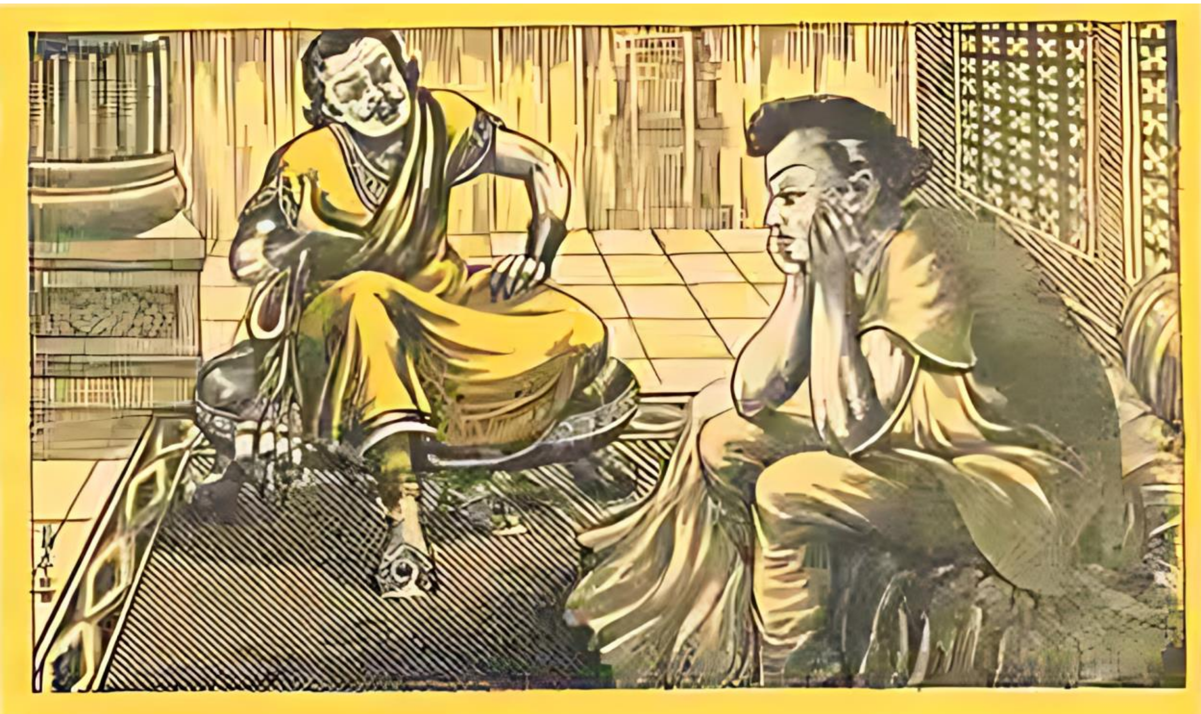
जब नन्द्रिकेतु को यह मालन हुआ कि उसकी लड़की, जो राजकुमारों से शादी कर सकती थी, एक सामन्त के लड़के को प्रेम कर रही है तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने तुरन्त राजा के पास जाकर कहा- "महाराज! भानुदत्त देशद्रोही है। उसे तुरत देश निकाला दे दीजिये।" राजा ने इसका कारण भी न पूछा। इसके लिए वे मान गये। ६० घड़ी में उसे देश छोड़कर जाने की आज्ञा हुई।

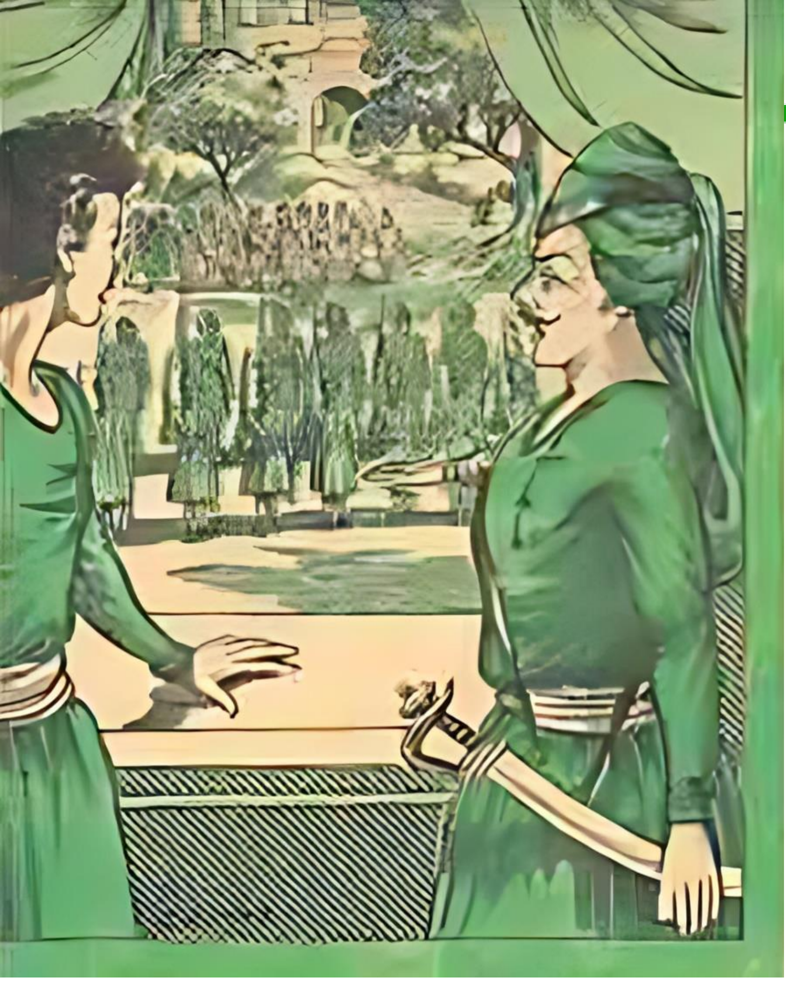
भानुदत्त बड़ा स्वामिभक्त था। उसने सोचा कि देश निकाले से अच्छी मौत है। परन्तु व्यर्थ क्यों मरा जाय? उसने सोचा कि नन्दिकेतु को, जिसके कारण उसका इतना अपमान हुआ था, मारकर क्यों न भरा जाय? बदला लेने के लिए वह उस रात को लुका छुपा, नन्दिकेतु के सोने के



कमरे में घुसा। पर तलवार भोकने से पहले उसे पुष्पावती याद आई। उसे ख्याल आया कि नन्दिकेतु के मारने से पुष्पावती को दुःख होगा। इसलिये भानुदत्त वापिस लौट गया। सवेरा होते होते वह अपना देश छोड़कर पास के राज्य के पुलिन्द नगर में चला गया।

पुलिन्द का राजा था तो कमजोर, पर उसमें दूसरों के राज्य हड़पने की इच्छा जरा प्रबल थी। मणिमन्त द्वारा बहिष्कृत व्यक्तियों को वह आश्रय देता और उनको बड़े बड़े ओहदों पर नियुक्त करता ताकि मौका पड़ने पर वे काम में आ सकें। जब उसको मालूम हुआ कि भानुदत्त उसके राज्य में आया है तो उसने उसे बुलाकर उसका खूब स्वागत किया और उसके आराम से रहने के लिए सब जरूरी प्रबन्ध करवा दिये। दो तीन वर्ष बीत गये। पर भानुदत्त बिलकुल न बदला। वह अपना अपमान भी न भूल पाया। पुष्पावती पर तो शायद उसका प्रेम कम हो गया था। पर नन्दिकेतु को मारने की इच्छा और भी बढ़ गई थी। और पुलिन्द का राजा तो इस ताक में था ही कि भानुदत्त के मन में कैसे बदले की





भावना जगाई जाय। उसने एक दिन भानुदत्त से कहा-"मित्र! मैं तुम्हें कष्ट सहता देख नहीं पाता हूँ। जितनी सेना तुम चाहो मैं तुम्हारे साथ भेज सकता हूँ। जाकर अपने शत्रु नन्दिकेतु को मार डालो और चाहो तो मणिमन्त राज्य को ही कब्जे में कर लो। क्योंकि तुम उस राज्य की हालत से भलीभाँति परिचित हो, इसलिये थोड़ी सेना से ही उसे जीत सकते हो।"

नन्द्रिकेतु का नाम सुनते ही भानुदत्त दाँत कटकटाने लगा। उसने कहा-"न मुझे राज्य चाहिए न कुछ और ही। मुझे दो ही दो चीजें चाहिये -एक नन्दिकेतु और दूसरी उसकी लड़की।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।" पुलिन्द के राजा ने कहा। उसने भानुदत्त को भेजकर अपने सेनापति को बुलवाया। "अच्छे से अच्छे साठ योद्धाओं को चुनकर भानुदत्त के साथ भेज दो। उनमें उन सब को शामिल कर दो जो मणिमन्त के यहाँ से आये हुए हैं। उनको लेकर पहले भानुदत्त नन्दीकेतु को मार देगा और इस बीच में तुम अपनी सेनाओं को मणिमन्त के राज्य में ले जाओ। नन्दिकेतु के मर जाने से उसकी सेना में अराजकता फैल जाएगी। हमारे योद्धा राजमहल पर और सैनिकों की छावनी पर कब्जा करलेंगे। समझे?" राजा ने कहा और सेना नायक ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

अगले दिन साठ योद्धा भानुदत्त के पास गये। उन्होंने कहा-"आपकी मदद के लिए हमें राजा ने आपके पास भेजा है। आप जो कहेंगे हम करेंगे।"

आपकी मदद बड़ा खुश हुआ। नन्दिकेतु को मारने का उसे मौका मिल रहा था। इसलिये वह सोचने लगा कि उन योद्धाओं का कैसे उपयोग किया जाय। उनमें से कई

उसी की तरह देश से बहिष्कृत थे। वे मणिमन्त राज्य का कोना कोना जानते थे।

निश्चय हुआ कि सब मिलकर मणिमन्त की और कूच करें। उन्होंने साथ अच्छे हथियार भी ले लिये। भानुदत्त के साथ जाते हुए योद्धाओं में से कई ने कहा कि अब हमारा बहिष्कार समाप्त हो रहा है; हम फिर से मणिमन्त में रहने लगेंगे।

"वह कैसे?" भानुदत्त ने पूछा।

"आज रात नन्दिकेतु मार दिया जायेगा और कल सवेरे पुलिन्द की सेनाएँ मणिमन्त में चली आएँगी। क्या आप नहीं जानते यह?" उन्होंने पूछा।

भानुदत्त को यह सुन बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा था कि पुलिन्द, नन्दिकेतु का बदला लेने के लिये उसकी मदद कर रहा था। उसने कभी ख्वाब में भी न सोचा था कि मणिमन्त को आसानी से जीतने के लिये वह उसकी सहायता कर रहा था।

आधी रात के समय भानुदत्त और साठ योद्धा, मणिमन्त के किले के पास पहुँचे। बाकी योद्धाओं को उसने दूरी पर ही खड़े रहने को



कहा और स्वयं भानुदत्त जाकर फाटक खटखटाने लगा।

"कौन हो?" फाटक के उस तरफ से आवाज आई।

"मैं भानुदत्त हूँ।" भानुदत्त ने कहा। तुरत फाटक का छोटा द्वार खोला गया। द्वार-रक्षक ने बाहर आकर पूछा "तो आप हैं? आप अकेले क्यों आये? कोई खतरा तो नहीं है?"

"थोड़ा काम है। सवेरे होते ही वापिस चला जाऊँगा।" भानुदत्त ने कहा।

"तो आइये।" द्वार-रक्षक ने भानुदत्त को अन्दर आने दिया और द्वार के किवाड़ बन्द कर दिये। तुरन्त भानुदत्त द्वार-रक्षक पर

कूदा, और उसका गला घोंट दिया। फिर उसके मुख में कपड़े ठूँस दिये, उसके हाथ पैर बाँध कर पास के पेड़-पौधों के पीछे घसीट दिया। तब उसने साथ आये हुए योद्धाओं के आने के लिए द्वार खोल दिये। उन सब को ले जाकर उसने एक मन्दिर के आँगन में छुपा दिया। "मेरा काम जब तक पूरा न हो जाए तब तक तुम यहाँ रहना। मैं जल्दी ही वापिस आ जाऊँगा।" यह कह भानुदत्त चल पड़ा। वह सीधे नन्दिकेतु के घर जाकर उसके सोने के कमरे में पहुँचा। नन्दिकेतु गाड़ी नींद सो रहा था।

"दुश्मन आ गये हैं।" कहकर भानुदत्त ने उसे थपथपाकर उठाया।

नन्दिकेतु हड़बड़ाता उठा। जब उसने सामने भानुदत्त को देखा तो उसका दिल जोर से धड़कने लगा। उसके मुख से बात तक न निकली।

"तुम तो वीर हो, महावीर हो। आफत आ रही है और तुम यों आँखें बड़ी करके देख रहे हो?" भानुदत्त ने कहा।

"मुझे तलवार लेने दो। बेहथियार को न मारो।" नन्दिकेतु ने कहा।



भानुदत्त ने कहा-" मैं तुम्हारी तरह नीच नहीं हूँ। तुम्हें मुझसे कोई ख़तरा नहीं है। मन्दिर में साठ हथियारबन्द योद्धा हैं। उन्हें मन्दिर से बाहर न आने देने के लिए दीवारों पर सौ सैनिकों को चढ़वाओं । सब तरफ सैनिकों को देखकर वे अपने हथियार छोड़ देंगे। सवेरा होने पर पुलिन्द की सेनाएँ फाटक पर आ जाएँगी। किले की दीवारों पर अपनी सेना को सिद्ध रखो। यह बताने के लिए ही में आया हूँ।"

जाने कहाँ से नन्दिकेतु में शक्ति आ गई। उसने भानुदत्त के साथ सौ तीरन्दाजों को मन्दिर के पास भेजा। जब सब धनुष लेकर दीवारों पर चढ़ गये तो भानुदत्त ने अन्दर जाकर साठ योद्धाओं को बुलाया। उनके बाहर आते ही सौ तीरन्दाजों ने चिल्लाकर कहा-"हथियार नीचे रख दो।" भानुदत्त के योद्धा घबरा गये। उन्होंने अपनी तलवारें फेंक दीं । तुरन्त तीरन्दाजों ने दीवारों से कूद कर उनके हाथ-पैर बाँध दिये।

भानुदत, वहाँ से नन्दिकेतु और उसकी सेना को लेकर, दक्षिण द्वार पर पहुँचा। वहाँ पेड़ों की झुरमुट में पड़े द्वार-रक्षक को छुड़वाया। फिर सैनिक किले की दीवारों पर चढ़ गये।



सवेरे पुलिन्द की सेनाएँ पहुँची। उनके लिए द्वार खुलने तो अलग उनका बाणों ने स्वागत किया। देखते देखने पुलिन्द के कई सैनिक मारे गये। बाकी, इधर उधर भाग गये। नन्दिकेतु ने अपने सैनिकों के साथ उनका काफी दूर तक पीछा किया। थोड़ी देर बाद, नन्दिकेतु और भानुदत्त दरबार में पहुँचे। नन्दिकेतु ने दरबार में, सारी घटना सुनाकर कहा-"महाशय! हमने पहले भानुदत्त को देश निकाला दिया था। मेरी प्रार्थना है कि उसकी सजा रद्द कर दी जाय और उसको उप सेनाधिपति के पद पर नियुक्त किया जाय।" भानुदत्त सिर्फ उप सेनाधिपति ही न बना बल्कि नन्दिकेतु का दामाद भी बन गया।

वेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा-"राजा! भानुदत्त ने जब एक बार अपने प्रेम के लिए बदला लेना छोड़ दिया था, क्यों फिर बदला लेने का निश्चय किया था? फिर जब उसे मौका मिला तो बदला लेने की कोशिश दुबारा क्यों छोड़ दी थी? अगर जान बुझकर तुमने इन प्रश्नों का जवाब न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"प्रेम से बढ़कर प्रतीकार है। इसीलिए भानुदत्त में यद्यपि प्रेम ठण्डा हो गया था, पर बदले की भावना बनी रही थी, इसीलिये वह पुलिन्द की सहायता लेकर बदला लेने निकला। परन्तु प्रतीकार से भी बढ़कर देशभक्ति है। जब उसको मालम हुआ कि नन्दिकेतु से बदला लेने पर देश शत्रुओं के कब्जे में हो जायेगा, उसने अपना बदला लेना छोड़ दिया। और कोई बात नहीं है।" विक्रमार्क ने जवाब दिया।

इस तरह राजा का मौन भङ्ग होते ही, बेताल शव के साथ फिर पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)





ग्रह-बल

किसी जमाने में, विन्ध्यदेश में सुरेश नाम का एक राजा रहा करता था। एक दिन जब वह वेश बदल कर मन्त्री के साथ घोड़े पर सवार होकर शहर में बाहर जा रहा था कि उसको एक झोपड़ी में प्रसव वेदना के कारण एक औरत का कराहना सुनाई दिया। उस झोपड़ी के बाहर एक ब्राह्मण खड़ा पार्थना कर रहा था-"हे भगवान! मेरी पत्नी का जल्दी प्रसव हो।" परन्तु झोपड़ी के अन्दर पत्नी ने बच्चे को जन्म न दिया। थोड़ी देर बाद उस ब्राह्मण ने पार्थना की- "अभी मेरी पत्नी का प्रसव न करो। थोड़ी देर ठहरो।"

राजा और मन्त्री थोड़ी दूरी पर घोड़ों को रोक कर उस ब्राह्मण की अजीब प्रार्थना सुनने लगे। एक बार वह यह कहकर कि "प्रसव न हो " प्रार्थना करता और दूसरी बार, "प्रसव हो।" इस तरह घोड़ी देर तक करने के बाद झोपड़ी में, स्त्री का प्रसव हो गया। प्रार्थना ख़तम कर जब ब्राह्मण झोपड़ी में घुमने लगा तो राजा और मन्त्री भी आगे बढ़ गये और उस ब्राह्मण से जा मिले।

"तुम कौन हो? किस देश के हो? तुमने एक बार तो यह प्रार्थना की कि पत्नी का प्रसव हो, फिर कहा कि न हो। इसका क्या कारण है?" राजा ने उस ब्राह्मण से पूछा।

ब्राह्मण ने कहा-"बाबू! मैं दक्षिण देश का रहनेवाला हूँ। मैं ज्योतिष का अच्छा पण्डित हूँ। इस इच्छा से कि मेरी पत्नी ठीक समय पर भाग्यशाली बच्चे को जन्म दे; मैं यों कर रहा था।"

"तो क्या तुम्हारी पत्नी ने अच्छे समय में ही जन्म दिया है?" राजा ने पूछा।



"जी हाँ! बहुत ही अच्छे समय में एक लड़के को जन्म दिया है। वह जिस देश में पैदा हुआ है, उस देश की राजकुमारी से विवाह करेगा। उस देश का राज्य करेगा और बाद में आस पास के राज्यों को जीतकर सम्राट भी बनेगा।" कहता कहता ब्राह्मण अपने झोपड़े में चला गया।

राजा और मन्त्री एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। "क्या इस गरीब का लड़का मेरी लड़की से शादी कर इस राज्य का राजा बनेगा? मैं यह नहीं देख सकता।" राजा ने कहा।

"महाराज! आपकी तो लड़की ही नहीं है। क्यों उस पागल ब्राह्मण की बातों में पड़ते हैं?" मन्त्री ने कहा।

"अगर उस पागल बाह्मण को बात सच निकली तो तब क्या किया जाय? तुम चुप चाप उस झोंपड़े में जाकर उस लड़के को ले आओ, बाकी सब मैं खुद देख लूँगा।" राजा ने कहा।

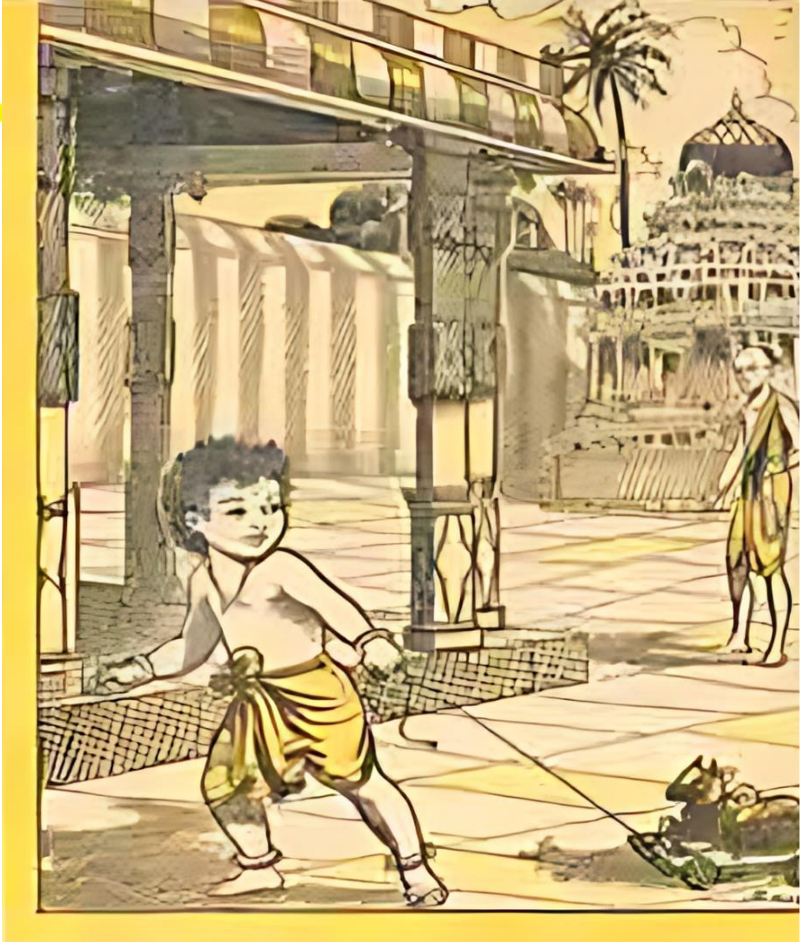
मन्त्री भी विचारा क्या करता? वह घोड़े से उतर कर चुपचाप झोपड़े में गया। दो स्त्रियाँ, उस स्त्री की सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं, जिसके बच्चा पैदा हुआ था। बच्चे को गूदड़ियों में चबूतरे पर रखा हुआ था। मन्त्री उस लड़के को लेकर राजा से जा मिला। दोनों थोड़ी दूर गये। तब राजा ने अपनी तलवार उस लड़के के पेट में भौंक दी और मन्त्री से कहा-"जाओ, इसे दूर फेंक आओ।" उस विचारे, बेकसूर लड़के को देखकर मन्त्री को बहुत दया आई। वह उस लड़के को एक पगडण्डी पर रख आया। राजा और मन्त्री फिर राजमहल में चले गये। जब वे जा रहे थे, उसी समय पासवाले मन्दिर के पुजारी, उस पगडण्डी से नदी

में स्नान करने जा रहे थे। उनको रास्ते में कोई कपड़े की पोटली सी दिखाई दी। आकर जो उन्होंने देखा तो वह एक लड़का था। अर्चक उस लड़के को लेकर तुरन्त घर वापिस चला गया। उसके पेट में तलवार का घाव था। पर वह जिन्दा था। अर्चक, जड़ी-बूटी की चिकित्सा में बड़ा कुशल था। वह कहीं से कुछ पत्ते बटोर लाया और उनका रस घाव पर लगाकर उसने पट्टी बाँध दी।

थोड़े दिनों में उस लड़के का घाव भर आया। अर्चक के अपने बाल-बच्चे न थे। वह उस बच्चे का पालन-पोषण करने लगा। उसका नाम उसने देवदत्त रखा और उसको पुत्र की तरह देखने लगा।

एक साल भी पूरा न हुआ था कि राजा की पत्नी को गर्भ हुआ और यथा समय उसकी एक लड़की पैदा हुई। उस लड़की का नाम चन्द्रावती रखा गया। यह सोच कि अगर वह उस दिन उस ब्राह्मण लड़के की हत्या न कर देता तो कभी वह उसकी लड़की का पति होता, राजा बड़ा प्रसन्न हुआ।

पर जिस बालक को राजा मरा समझ रहा था वह मन्दिर के आँगन



में खेलता कूदता, मजा करता, रोज बड़ा हो रहा था। उसकी शक्ल-सूरत, हाव-भाव देखकर, सब उसको पसन्द करते थे।

पन्द्रह वर्ष बीत गये। मन्दिर की भूमि के बारे में कुछ अन्याय हो रहा था। अर्चक एक दिन इसकी शिकायत करने राजमहल के लिए निकला। देवदत्त कभी मन्दिर की चारदीवारी से बाहर न गया था। इसलिए वह भी राजमहल देखने के लिए अर्चक के साथ चल पड़ा।

जब वे राजमहल में पहुँचे तब राजा राजमहल के बगीचे में टहल रहा था। अर्चक,

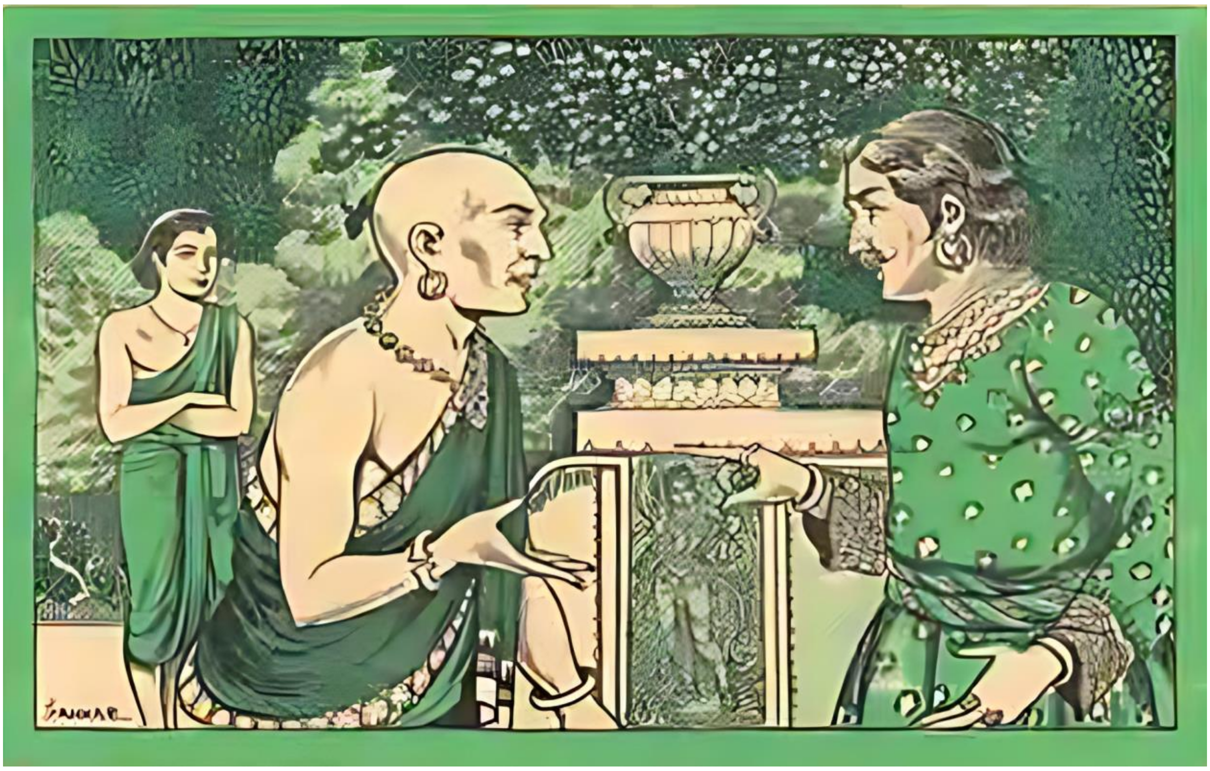
देवदत्त को एक पत्थर पर बिठाकर राजा के पास मन्दिर की भूमि के बारे में बातचीत करने गया। राजा ने वचन दिया कि वह अन्याय दूर कर देगा। तब दोनों मिलकर उस जगह पहुँचे, जहाँ देवदत्त बैठा हुआ था। उनको देखकर देवदत्त खड़ा हो गया।

"यह लड़का कोन है? बहुत खूबसूरत मालूम होता है।" राजा ने पूछा।

"यह मेरा लड़का है....हाँ, दत्तक लड़का है।" अर्चक ने कहा।

उस लड़के का वृतान्त अर्चक द्वारा सुनकर राजा बड़ा घबराया। वह वही लड़का था, जिसको उस दिन उसने मारने की कोशिश की थी। उसके पेट पर अब भी तलवार की चोट का निशान था। राजा ने सोचा कि उसका जीवित रहना न उसके लिए अच्छा था न उसकी लड़की के लिए ही। उसने अर्चक से कहा-"इस लड़के को उस मन्दिर में रखकर क्यों बिगाड़ते हो? यहाँ महल में रखो। दुनियाँ का अनुभव होगा।"

"आपकी दया। जरूर उसको आप अपने पास रखिये।" अर्चक ने कहा।



वह राजा से आज्ञा लेकर अकेला मन्दिर वापिस चला गया।

जानी दुश्मन देवदत्त का कैसे काम तमाम किया जाय, राजा को न सूझा। उसको मारने की पहली कोशिश के बारे में सिर्फ मन्त्री ही जानता था। वह कोशिश नाकामयाब रही। अब वह फिर उसके हाथ में आ गया था। बिना किसी के जाने, उसको उसे तुरन्त मार देना था। राजा के लिए उसको मारना एक समस्या हो गयी थी। वह हमेशा इस विषय में ही माथापच्ची करता रहता।

ठीक इसी समय राजा को दूर देश जाना पड़ा। जाते वक्त गजा देवदत्त को भी साथ ले गया। पन्द्रह दिन का सफर था। रास्ते में, जब कभी राजा देवदत्त को पहाड़ के नीचे ढकेलने की सोचता या नदी में गिरा देने की सोचता, तो हमेशा किसी न किसी को अपने पास पाता।

राजा को आखिर एक बात सूझी। उसने अपने मन्त्री को एक पत्र लिखा। उसमें उसने लिखा -"इस चिट्ठी को लानेवाला हमारा परम शत्रु है। इसको





जैसे तैसे मरवा दो और बिना किसी के जाने, इसका दहन संस्कार भी कर दो।" चिट्ठी पर राजा ने अपनी सील लगाई और उस चिट्ठी को देवदत्त को देते हुए कहा-"तुम तुरन्त राजधानी जाकर यह चिट्ठी मन्त्री को दो। यह बहुत जरूरी है।"

देवदत्त चिठ्ठी लेकर पन्द्रह दिन और रात लगातार घोड़े की सवारी करता रहा। वह सोलहवें दिन दोपहर को राजधानी पहुँचा। बड़ी कड़ी धूप थी। मन्त्री के लिए भोजन के बाद विश्राम का समय था।

देवदत्त ने थोड़ी देर बाद जाने की ठानी। वह बगीचे में घुसकर पेड़ों की झुरमुट में आराम से सो गया।

थोड़ी देर बाद, चन्द्रावती अपने सहेलियों के साथ वहाँ खेलने कूदने आयी। वे एक दूसरे का पीछा कर पकड़ने लगी। चन्द्रावती अपनी सहेलियों की नजर बचाकर उस झुरमुट में घुस गयी और वहाँ देवदत्त को सोता देख वह हैरान रह गयी। वह बहुत खूबसूरत था। पर अजनबी था। पूछने की सोची। पर थका-माँदा, वह गहरी नींद में था। उसके जेब में रखी चिट्ठी उसको दिखाई दी। चन्द्रावती ने चिट्टी निकाली। चिठ्ठी पर अपने पिता की सील देखकर वह बिना किसी हिचकिचाहट के उस चिट्ठी को पढ़ने लगी।

तुरन्त राजकुमारी का कलेजा थम सा गया। इस खूबसूरत लड़के को मारने के लिए उसके पिता ने मन्त्री को क्यों लिखा है? अगर इस लड़के को मालूम होता कि इस चिठ्ठी में क्या लिखा है तो वह इतनी दूर से इसे क्यों लाता? उसको जैसे जैसे देखती जाती, वैसे वैसे चन्द्रावती को उससे प्रेम होने लगा। उसे दया भी आने लगी।

जब राजकुमारी दिखाई न दी, तो उसकी सहेलियाँ उसे पुकारने लगी। चन्द्रावती झुरमुट से बाहर आ गयी। सहेलियों से मिली। उनमें से एक को बगीचे के द्वार पर पहरा देने के लिए कह, और दूसरी को कई शपथें करवाकर, वह चिट्ठी दिखायी। काफी देर तक सलाह-मशवरा होता रहा। आखिर यह तय हुआ कि उस चिट्ठी को फाड़ दिया जाय और उसकी जगह दूसरी चिट्ठी लिख कर उसकी जेब में रख दिया जाय।

फिर चन्द्रावती ने अपने कमरे में जाकर यह चिट्ठी लिखी-"इस चिट्ठी को लाने वाला हमारा परम मित्र है। इसका मेरी लड़की, सौभाग्यवती चन्द्रावती के साथ विवाह कर दिया जाय। मेरे आने तक विवाह को रोकने की कोई जरूरत नहीं है।" चिट्ठी पर सील लगाकर तुरन्त जाकर सोते हुए देवदत्त की जेब में रख दिया।

फिर चन्द्रावती और उसकी सहेलियाँ अट्टहास करके हँसी। उन्होंने शोर किया। शोर के कारण देवदत्त नींद से उठा। बह घबराता हुआ खड़ा हुआ। कहीं ऐसा न हो



कि देरी हो जाये। वह चिट्ठी लेकर तुरन्त मन्त्री के पास गया।

चिट्ठी पढ़कर मन्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा-"क्यों भाई! राजा ने तुमसे क्या कहा था?"

"इस चिट्ठी को आपको देने के लिए कहा था।" देवदत्त ने कहा।

"क्या तुम जानते हो इसमें क्या लिखा है?" मन्त्री ने पूछा।

देवदत्त ने कहा-"मुझे मालूम नहीं है।"

"अच्छा, तो तुम जाकर राजमहल में ठहरो। मैं फिर तुम्हारे लिए ख़बर भेजूँगा।"

यह कह मन्त्री राजकुमारी के पास गया, और उसी को उसकी जाली चिठ्ठी दिखाई। चन्द्रावती ने पूछा, जैसे उसे कुछ मालूम ही न हो-"यह क्या है? पिताजी की गैरहाजिरी में किसी से कैसे शादी करूँ? यह कैसे हो सकता है?"

"मैं भी क्या कर सकता हूँ? राजा की आज्ञा है। उसका उल्लंघन करना मेरे अधिकार में नहीं है।" मन्त्री ने कहा।

"जो आपकी मर्जी हो, वही कीजिये। मुझ से पूछने को क्या जरूरत?" चन्द्रावती ने कहा।

मन्त्री ने जोर-शोर से विवाह की तैयारियाँ शुरू कर दी। और दो-चार दिनों में बड़े धूमधाम से चन्द्रावती का बिवाह देवदत्त से कर दिया। उस विवाह में उपहार पाने के लिये दूर दूर से ब्राह्मण आये।

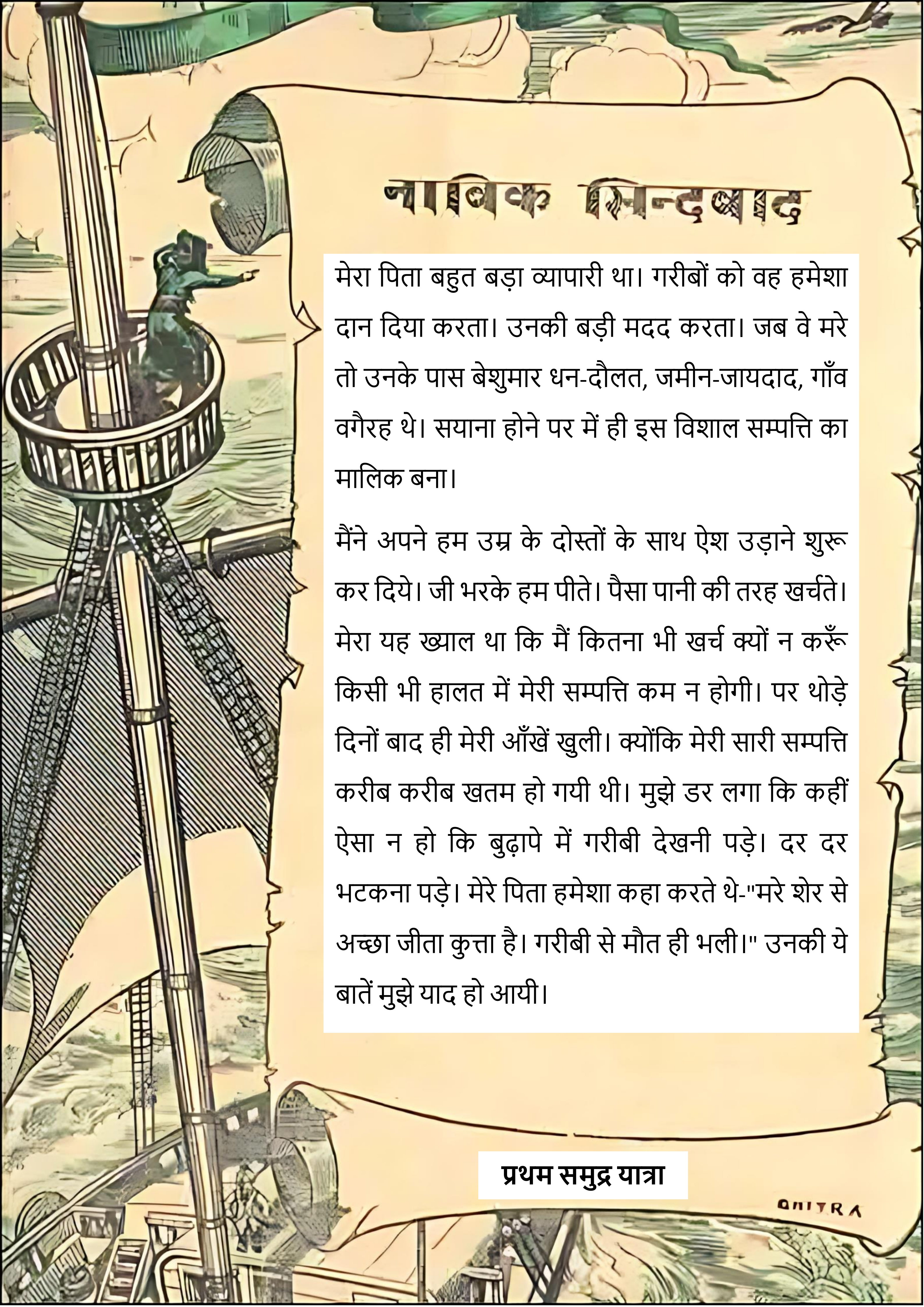
इस बीच में राजा बापसी यात्रा पर निकला। विवाह से वापिस जाते हुए ब्राह्मणों ने उसको शादी के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर कहा। राजा को वह सुन आश्चर्य हुआ। उसकी अनुपस्थिति में उसकी लड़की का किसने विवाह किया? क्यों किया? वह इसी उधेड़बुन में पड़ा अपनी राजधानी में पहुँचा। वहीं उसको सारी घटना मालूम हुई।

"मेरी लिखी चिट्ठी कहाँ है?" राजा ने पूछा। मन्त्री ने चिट्ठी दिखा दी। राजा जान गया कि उसकी लड़की ने ही वह चाल चली थी। पर उसने कुछ न कहा।

"महाप्रभु। आपको जो विवाह स्वयं करवाना चाहिये था, आपने मुझ से क्यों करवाया?" मन्त्री ने पूछा।

"अरे पागल! यह सब ग्रहों का बल है।" राजा ने कहा।





नाविक सिन्दबाद

मेरा पिता बहुत बड़ा व्यापारी था। गरीबों को वह हमेशा दान दिया करता। उनकी बड़ी मदद करता। जब वे मरे तो उनके पास बेशुमार धन-दौलत, जमीन-जायदाद, गाँव वगैरह थे। सयाना होने पर में ही इस विशाल सम्पत्ति का मालिक बना।

मैंने अपने हम उम्र के दोस्तों के साथ ऐश उड़ाने शुरू कर दिये। जी भरके हम पीते। पैसा पानी की तरह खर्चते। मेरा यह ख्याल था कि मैं कितना भी खर्च क्यों न करूँ किसी भी हालत में मेरी सम्पत्ति कम न होगी। पर थोड़े दिनों बाद ही मेरी आँखें खुली। क्योंकि मेरी सारी सम्पत्ति करीब करीब खतम हो गयी थी। मुझे डर लगा कि कहीं ऐसा न हो कि बुढ़ापे में गरीबी देखनी पड़े। दर दर भटकना पड़े। मेरे पिता हमेशा कहा करते थे-"मरे शेर से अच्छा जीता कुत्ता है। गरीबी से मौत ही भली।" उनकी ये बातें मुझे याद हो आयी।

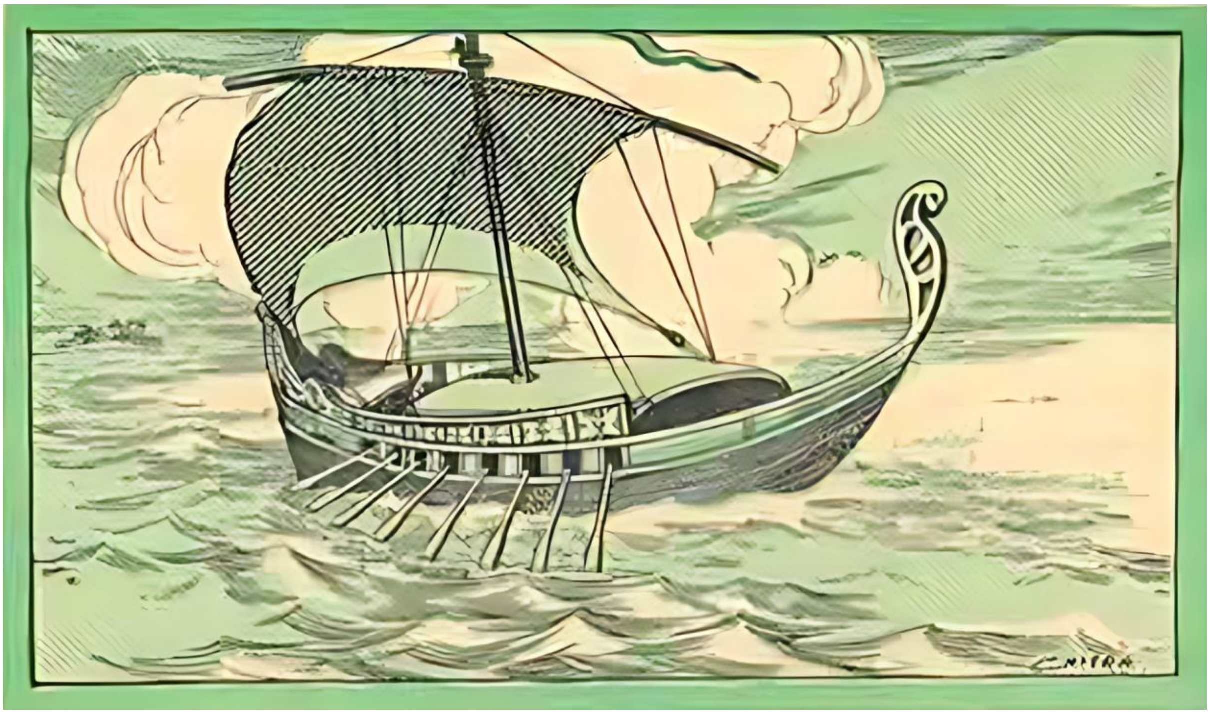
प्रथम समुद्र यात्रा

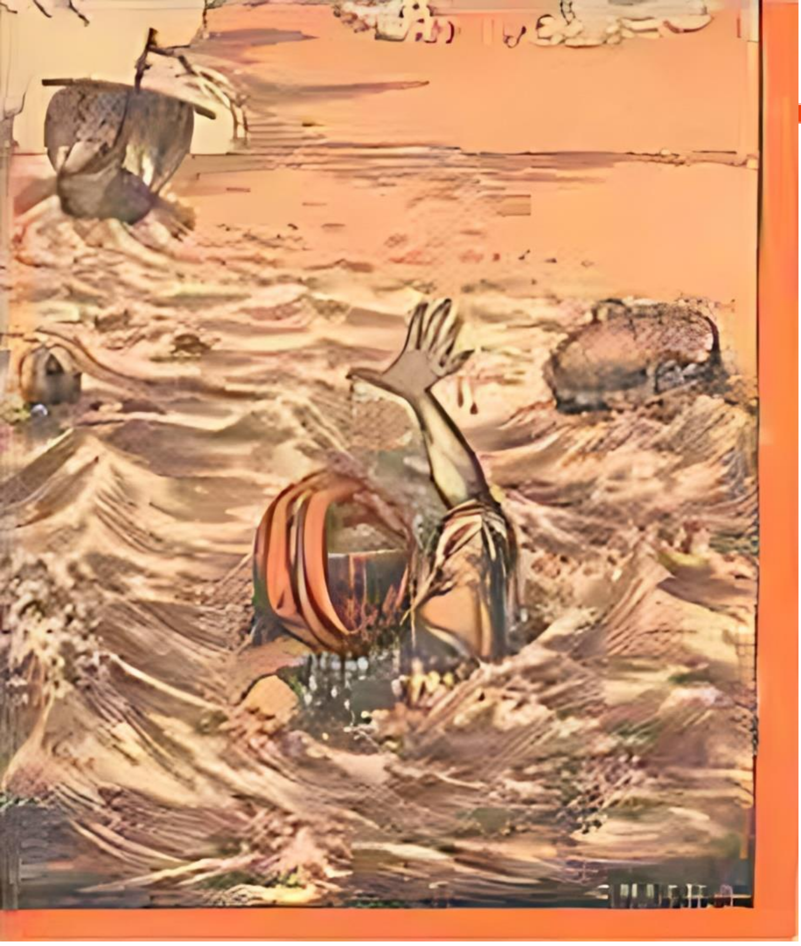
इसलिए जो कुछ मेरे पास बाकी रह गया था उसको बेच बाचकर तीन हजार चान्दी की दीनारें नकद बना लीं। इस धन को लेकर मेरा घूमने-फिरने का ख़याल था। यह तो कहावत है ही कि जितने गहरे जाओ, उतने ही अच्छे मोती मिलते हैं। उस पैसे से तरह तरह की चीजें खरीदकर, बग़दाद से मैं भी एक नाव में निकला। उसी नौका में और भी कई व्यापारी थे। नौका बसरा की ओर जा रही थी।

बसरा से हमने समुद्र में यात्रा शुरू की। रास्ते में कितने ही द्वीप दिखाई दिये। कितने ही बन्दरगाह आये। हर जगह मैं अपना माल बेचता और दूसरा माल खरीदता। यही सिलसिला जारी रहा।

कई दिनों तक हमें भूमि भी न दिखाई दी। फिर हम एक सुन्दर द्वीप में पहुँचे। वह बहुत ही हरा भरा था। मरकतमणि की तरह आकर्षित कर रहा था। नौका ने द्वीप के पास लङ्गर डाला। रस्सियों की सीढ़ी द्वारा दूसरे यात्रियों के साथ मैं भी जमीन पर उतर गया।

सभी व्यापारियों के पास खाने की चीजें और पकाने के लिए बर्तन वगैरह थे।





कई ने आग जलाकर रसोई बनानी शुरू कर दी। कई अपने कपड़े धोने लगे। कुछ इधर उधर मटरगश्ती करने लगे, कुछ आराम करने लगे। मैंने, न केवल खाने पीने का ही प्रबन्ध किया, अपितु वहाँ अजीब पेड़ों के बीच घूम-फिर कर सब कुछ देख भी लिया।

हम अपने अपने काम में मशगूल थे कि वह द्वीप एक सिरे से दूसरे सिरे तक यकायक काँप गया। जो जहाँ खड़ा था, वही गिर पड़ा। जब हम होश-हवास खोये हुए जमीन पर गिरे हुए थे, तब नौका का कप्तान, नौका से हाथ उठाकर जोर जोर से पागल की तरह चिल्ला रहा था-"खतरा है, अपनी जान बचाओ। यह द्वीप नहीं है। यह बहुत बड़ा तिमङ्गल मछली है। क्योंकि सालों से यह समुद्र में पड़ा है, इसलिये उसकी पीठ पर रेत जमा हो गई है और रेत में पेड़-पौधे उग आये है। आपने आग जलाकर उसे चिढ़ा दिया और वह अब हिल रहा है। जल्दी कीजिए। आप आ जाइये। नहीं तो वह पानी में डूबेगा और साथ आप लोग भी डूबेगे।"

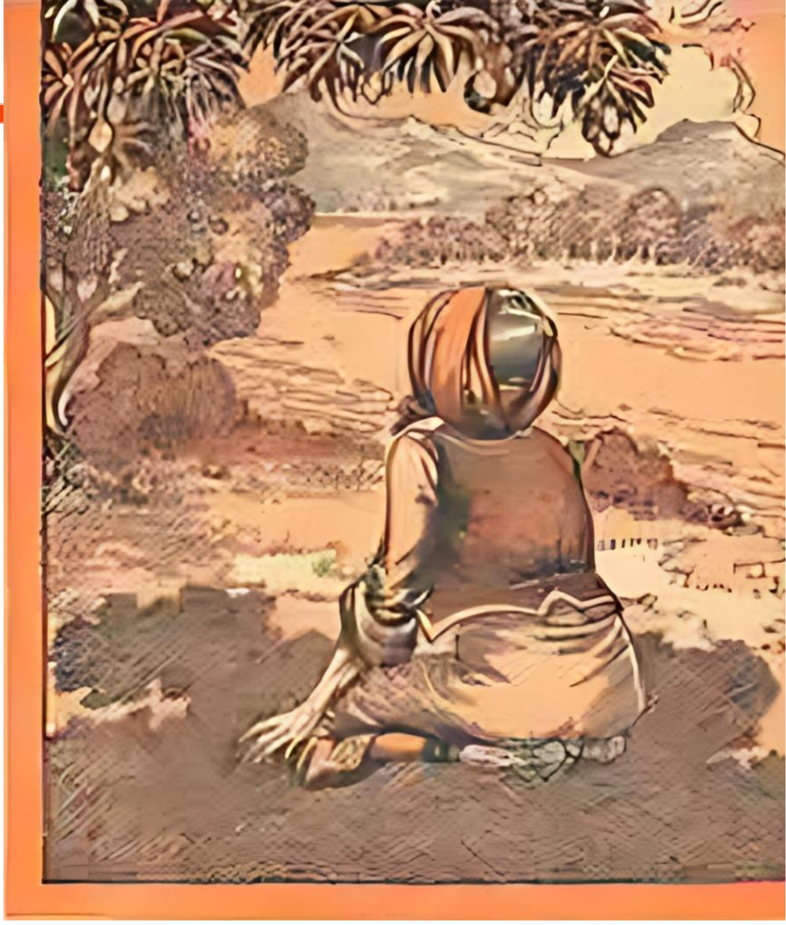
यह सुन व्यापारी अपना सामान, वर्तन वगैरह छोड़ कर, नौका की ओर दौड़े। नौका का लङ्गर उठा दिया गया। नौका चल पड़ी। कई नौका को पकड़ पाये और कई नहीं। और इस बीच में तिमङ्गल पानी में डूब भी गया। जो उसकी पीठ पर रह गये थे, वे समुद्र में छोड़ दिये गये।

उन लोगों में मैं भी एक था। परन्तु ख़ुदा की मेहरबानी से एक लकड़ी का कठौता मेरी तरफ बहता आया। व्यापारियों ने उसमें कपड़े धो रखे थे। उसने मुझे समुद्र में डूबने से बचा दिया। जान पर

मोह था, इसलिए मैंने उसको पकड़ लिया, और बड़ी मुश्किल से उसमें चढ़ बैठा। जब अच्छी तरह बैठ गया, तो पैरों को चप्पू की तरह चला चला कर आगे बढ़ता गया। परन्तु लहरों के जोर से वह कठौता कभी इधर झुकता तो कभी उधर। मेरी हालत बड़ी नाज़ुक थी।

इस बीच में, नौका के पाल ऊँचे कर दिये गये और वह वायु वेग से बहने लगी। मैं भी पैरों को जोर से चप्पू की तरह चलाता नौका की ओर जी-जान से जाने लगा। परन्तु वह थोड़ी देर में ही, नज़र से बाहर हो गयी। अन्धेरा भी हो गया। मैंने सोचा कि मैं मर ही जाऊँगा। रात भी, समुद्र से लोहा लेता रहा। आखिर मुझे हवा, और लहरों ने एक द्वीप पर लाकर पटक दिया। द्वीप के किनारे बड़े बड़े पहाड़ थे। परन्तु पहाड़ों से कई बेलें समुद्र पर लटक रही थीं। मैं अपनी सारी ताकत लगाकर उन बेलों के सहारे पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया। मैंने अपनी जान बचा ली।

चोटी पर पहुँच कर मुझे अपनी दुस्थिति का भान हुआ। मेरे सारे



शरीर पर घाव और छाले पड़ गये थे। समुद्र की मछलियों ने मेरे पैरों को खा लिया था। मुसीबत में था, इसलिये मेरा ध्यान इन घावों की तरफ गया ही न था; परन्तु अब दर्द होने लगा। दर्द के कारण बेहोश हो गिर गया।

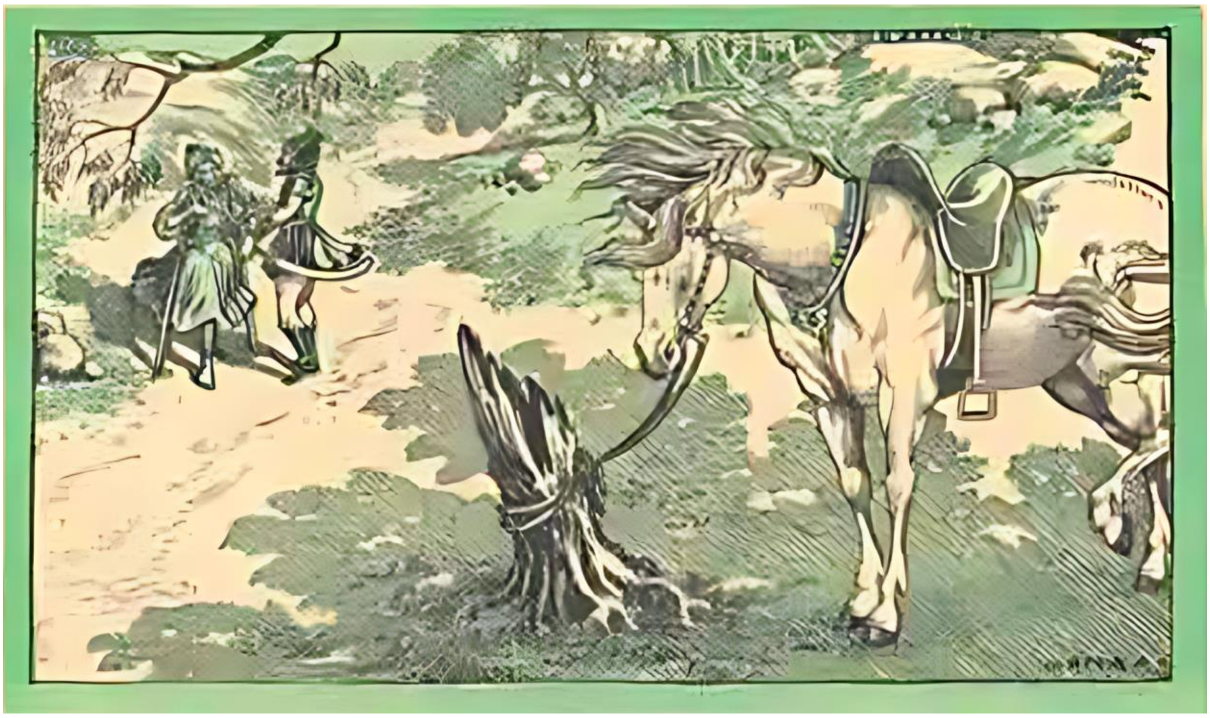
दिन भर मैं बेहोश पड़ा रहा। जब अगले दिन मेरे मुँह पर धूप पड़ी तो मैं उठा। मैंने खड़े होने की कोशिश की, पर पैर जबाब दे चुके थे। मैं नीचे गिर पड़ा। मेरी स्थिति क्या थी, क्या बताऊँ! जैसे जैसे, रेङ्गता रेङ्गता में एक समतल

जगह पर पहुँचा। वहाँ फलों के पेड़ थे। पानी भी था।

उन्हें खा-पीकर में वहाँ बहुत दिनों तक आराम करता रहा। कुछ ताकत भी आ गई। मेरे घाव भी धीरे धीरे भर गये। इधर उधर घूमने के लिये मैंने एक-दो डण्डे भी बना लिये। उनके सहारे में फल तोड़ता, खाता-पीता, अल्लाह को दुआ देता, मजे में रहने लगा। मुझे किसी तरह की चिन्ता न थी।

जब मैं एक दिन किनारे पर टहल रहा था तो मुझे दूरी पर कोई जानवर-सा कुछ दिखाई दिया। मैं उसके पास गया। वह एक बँधा हुआ घोड़ा था। वह कोई मामूली घोड़ा नहीं था। अच्छी नसल का जान पड़ता था। पास जाकर उस पर चढ़ने की मेरी मर्जी हुई। अभी मैं घोड़े से काफी दूर ही था कि किसी व्यक्ति ने मेरी तरफ आते हुए पूछा- "तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? यहाँ आने की तुमने कैसे हिम्मत की? कोई और भी है तुम्हारे साथ?"

"बाबू। मैं समुद्र-यात्रा कर रहा था। मैं और मेरे कुछ साथी समुद्र में गिर गये।

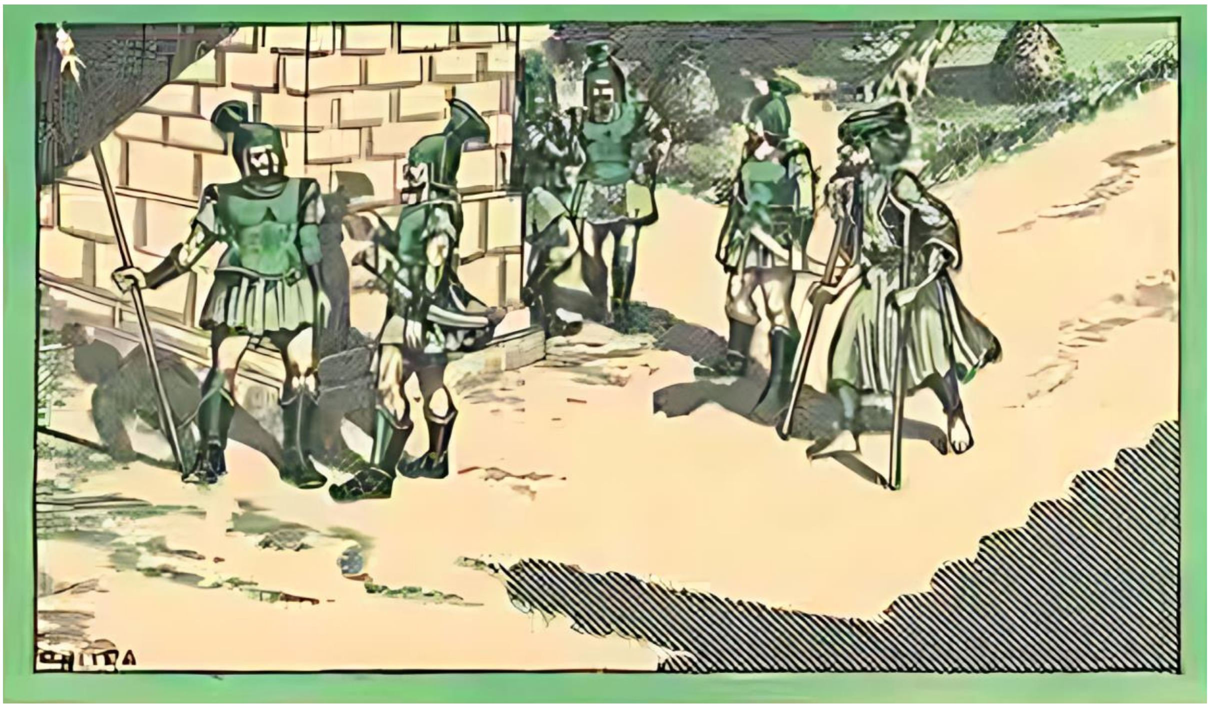


ख़ुदा ने मेरी जान बचाई और मुझे आपके द्वीप में लाकर रख दिया।" मैंने बड़े विनीत भाव से कहा।

"मेरे साथ आओ।" कहते हुए, वह व्यक्ति मेरा हाथ पकड़कर मुझे एक गुफा की ओर ले गया। अन्दर एक बड़ी चोपाल-सी थी। उसने मुझे एक अच्छी जगह बिठाकर खाना परोसा। पेट भरने के बाद उसने मेरी कहानी पूछी। मैंने अपनी कहानी उसे सुना दी। मेरी कहानी सुनकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

"मैंने अपनी कहानी सुना दी। अब आप भी अपने बारे में सुनाइये।" मैने उस व्यक्ति से पूछा।

"इस द्वीप में, मुझ जैसे कई आदमी हैं। हमारा काम मीरजान महाराजा के लिए घोड़े लाकर देना है। प्रति अमावस्या के दिन समुद्र में से अच्छे अच्छे घोड़े किनारे पर चरने आते हैं। उन्हें पकड़ना ही हमारा काम है। मैं तुम्हें मीरजान महाराजा के पास ले जाऊँगा। अच्छा हुआ कि हम एक दूसरे से मिल सके। नहीं तो तुम इस द्वीप में यूँ ही गर मरा जाते।" उस व्यक्ति ने कहा।





नौकरी में मुझे काफी फुरसत मिलती थी। इसलिए में राजा से रोज मिला करता। रोज़ उनका विश्वास मेरे ऊपर बढ़ता गया। वे हर रोज़ कोई न कोई इनाम मुझे देते। आखिर ऐसा समय भी आया जब वे बिना मेरी सलाह के कोई भी राज का कार्य न करते।

यद्यपि मेरे दिन मजे में कट रहे थे, फिर भी मुझे अपने देश की याद नित सताती रहती। मैं उम्मीद बाँधे बैठा था कि कभी न कभी में अपने देश वापिस जा सकूँगा। मैंने कई नाविकों से पूछा-"बग़दाद शहर किस ओर है?!" परन्तु किसी ने भी कुछ न बताया। उनको उस शहर का नाम भी न मालूम था। इसलिए जैसे जैसे दिन गुजरते गये, वैसे वैसे मेरी स्वदेश जाने की इच्छा भी प्रबल होती गई। पर साथ यह भय भी बढ़ता गया कि शायद वापिस न जा पाऊँ।

एक दिन, जब मै बन्दरगाह में खड़ा, नावों को देख रहा था तो बन्दरगाह में एक बड़ी नौका आयी। उसके लङ्गर डालते ही,

इस बीच में और नौकर भी वहाँ पहुँचे। मुझे एक घोड़े पर चढ़ाया सब मिलकर मीरजान महाराजा के महल में गये। नौकरों ने जाकर राजा से मेरे बारे में पहले कहा। बाद में मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने मेरा आदर-सत्कार किया। मैंने अपनी कहानी फिर सुनायी। उन्होंने कहा- "तुम्हारी आयु लम्बी मालूम होती है। नहीं तो इतनी मुसीबतें झेलने के बाद तुम जिन्दा न रहते।" उन्होंने मुझे अपना विश्वासपात्र बना लिया और मुझे बन्दरगाह और नौकाओं की देख-रेख करने के लिए अच्छे पद पर नियुक्त किया।

सीढ़ी नीचे की गयी। मैं जाकर जहाज़ के कप्तान से मिला। मैंने नौका के माल की जाँच-पड़ताल की। जब नाविक उसको बाहर निकाल रहे थे तो मैंने उसकी फेहरिश्त भी तैयार कर ली। जब सारा माल उतार दिया गया तो मैने कप्तान से पूछा-"क्या नाव में और कुछ नहीं है?" उसने कहा-"है तो। पर वह बेचने के लिए नहीं है। इसलिए तले में रख रखा है। उस माल का व्यापारी समुद्र में डूब गया है। मौक़ा मिलने पर मैं वह माल उसके रिश्तेदारों को सौंप दूँगा। वे बगदाद में रहते हैं।"

मेरा दिल तेजी से चलने लगा। "उस आदमी का नाम क्या है?" मैंने उत्कण्ठापूर्वक कप्तान से पूछा। "नाविक सिन्दबाद।" उसने जवाब दिया। मैने उस आदमी को गौर से देखा। वह वही था, जो हमें समुद्र में छोड़कर नाव ले गया था।

"मैं ही नाविक सिन्दबाद हूँ।" मैं जोर से चिल्लाया। मैने उसको अपना किस्सा जैसे जैसे गुज़रा था, वैसे वैसे सुना दिया। परन्तु कप्तान को मेरी



बातों पर यकीन न हुआ।" "कितना अन्याय! कितना धोखा! हम सब ने सिन्दबाद की समुद्र में डूबते देखा और तुम कहते हो कि तुम ही सिन्दबाद हो। झूठ बोलते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती?"

"झूठ बोलने की मुझे क्या पड़ी? मैं यह साबित कर दूँगा कि मैं ही सिन्दबाद हूँ। देख लेना।" मैंने उसको यह बताया कि कैसे हम ने निमङ्गल मछली को एक द्वीप समझ लिया था, कैसे हम उस पर उतरे थे। आखिर कप्तान को मुझ पर विश्वास करना पड़ा। उसने नौका में यात्रा करनेवाले और

व्यापारियों को बुलाकर उनसे मेरा परिचय कराया। उन सब ने ख़ुदा को दुआ दी। कप्तान ने मेरा माल मुझे सौंप दिया। मैंने माल में लगी सील को देखा। कुछ बहुमूल्य चीजें मीरजान महाराजा को भेंट देने के लिए छोड़, मैने बाकी सामान बजार में ले जाकर बिकवा दिया। इस बिक्री से मुझे एक रुपये पर सौ रुपये की आमदनी हुई।

राजा यह सुन बड़ा सन्तुष्ट हुआ। वह मुझे बहुत चाहता था। मेरे उपहारों के बदले उन्होंने कई गुने अधिक उपहार मुझे दिये। मैंने उनको भी तुरन्त बिकवा दिया। नकद पैसा ले जाकर नौका में रखवा दिया। यात्रा की तैयारी कर मैं आखिरी बार राजा को देखने गया। मैंने उनको धन्यवाद दिया; उनके सामने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। मुझे जाते देख उन्हें बड़ा अफ़सोस हुआ। उन्होने इस बार मुझे तरह तरह के इत्र, चन्दन, कपूर, अगरबती आदि, भेंट में दिये। ये चीजें उस द्वीप में बहुतायत में पायी जाती थीं। उन सब को नौका में चढ़ाकर में अपनी जन्म भूमि की तरफ निकल पड़ा।

खुदा की मेहरवानी से, नाव को अनुकूल हवा मिली। बहुत दिन सफर करने के बाद, बसरा होते हुए इम जन्मभूमि बगदाद पहुँचे। खुश किस्मती से मेरे दोस्त सब स्वस्थ और कुशल थे । मैंने अपने धन से कई मकानात, गुलाम, बाग-बगीचे, जमीन-जायदाद बगैरह खरीदे। जो मेरे पिता मुझे दे गये थे, उससे कहीं अधिक मेरी सम्पत्ति हो गई थी। मैं मजे में रहने लगा और पहली समुद्र यात्रा के कष्टों को धीमे धीमे भूल गया और इस तरह पहली समुद्र यात्रा का अन्त हुआ।

(अभी और है)



